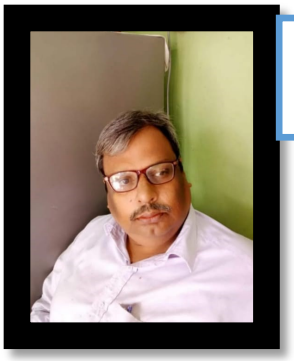

संजय कुमार सिंह

कटिहार
बिहार

लांछन

कम्मो दी के पास जब भी जाता। वह मुझे खूब स्नेह करती। छाती से चिपटा लेती। उसकी आँखें चमक आतीं ,कहती," जाओ गुलाब के दो-चार फूल लेकर आओ..." मैं बला की फुर्ती से उछल कर जाता। बिल्ली की तरह सावधानी से गार्डेन में घुसता और फूल निकालता, उसे शर्ट की जेब में छुपाता। फिर आ जाता। दीदी खुश हो जाती। पूजा-पाठ करना। जीजा के फोटो पर फूल चढ़ाना उसकी दिनचर्या थी। वह इसके बाद मुझे मिश्री देती।फिर खीर-पूरी खिलाती हुई अपलक मुझे देखती। मैं कभी -कभी उसके इस तरह देखने से हड़बड़ा जाता। मुझे समझ में ही नहीं आता कि वह क्या देख रही है मुझमें.. मैं कहता," तुम क्या खाओगी?" वह कहती," मुझे भूख नहीं लगती...." "फिर बनाती काहे हो..." "अपने सानू के लिए..."मैं झेंप जाता।

दीदी की शादी धूमधाम से हुई थी नेभी के एक अफसर से, पर पानी का जहाज पानी में डूब गया। वे छुट्टियों में गाँव आए थे। दोस्तों की जिद्द पर नदी नहाने गए और डूब गए। बहुत खोजा गया पर नहीं मिले। नेभी वाले भी थक कर लौट गए... कुछ समय ससुराल में रहने के बाद कम्मो दीदी गाँव लौट आयी। पिता पहले मर चुके थे,माँ इस सदमें को नहीं झेल सकी। रह गयी निपट अकेली कम्मो दी यानि कामिनी दी। अपरूप सुंदरी कामिनी दी। अपने अकेलेपन से बचने के लिए वह चिड़ी - चुनमुन... सुग्गा-मैना का एक अलग संसार पाल रक्खा था। पूजा-पाठ के बाद सबको दाना-पानी देना वह नहीं भूलती। मेरा आकर्षण इन सब को भी लेकर था। रोज-रोज गुलाब देकर मैं कम्मो दी के हृदय -प्रदेश में प्रवेश कर गया

था, पर यही एक कारण नहीं होगा.. फूल तो एक बहाना था, वह थी ही ऐसी... सहृदय... निश्छल... गंगा... हमारे गार्डेन में फूल भी क्या फूल थे। एक गुलाब की बीसियों वेरायटी, अरहुल, चंपा, बेला, कचनार.. गेंदा...बाबू जी ने शौक से गार्डेन बनाया था। वे स्कूल जाने से पहले घंटो बागवानी करते। एक-एक फूल को सावधानी से काटते-छाँटते। उन्हें फूल तोड़ना पसंद नहीं था, पर कम्मो दी के सम्मोहन में मैं रोज-रोज उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ फूल चुरा कर उसे देता। उन्हें कुछ पता नहीं चलता।

एक दिन फूल देकर मैंने पूछा," दीदी आप जीजा को बहुत प्रेम करती थी न?" इस सवाल के बाद उसने कुछ पलों के विस्मय के बाद मुझे सीने से चिपटा लिया। मैं उस कसावट में उसके दिल की धड़कनों को साफ महसूस कर रहा था... एक पूरी नदी ज़ज़्ब थी उसके अंदर... जो बहने लगी थी... असंख्य चिड़ियाएँ उड़ रही थीं उसके अंदर से निकल कर... रंग-बिरंगी तितलियों ने हमें घेर लिया था ... धीरे-धीरे उसका तनाव ढीला हुआ... वह अंदर गयी और पतंग ले आयी और बोली, " चलो आज हम छत पर उड़ायें..." हम देर तक उड़ाते रहे...नीले आसमान की अनंत ऊँचाइयों तक .... एक तितली की तरह पतंग परवाज कर रही थी...अचानक मैंने पूछा," तुम कहाँ तक उड़ना चाहती हो दीदी? "

दीदी हैरत से ताकने लगी, जैसे वह समझ गयी मैं क्या कहना चाह रहा था ... क्या पता जीजा कहीं होगे उस नीलिमा में जहाँ वह पहुँचना चाह रही हो... रोमांच पराकाष्ठा पर था कि तभी पतंग की डोर कट गयी...दीदी धम्म से छत पर बैठ गयी,जैसे उसके होंठ पटपटा रहे हों... दीदी के साथ बचपन की स्मृतियाँ गहन रूप से जुड़ी थीं। उसका व्यवहार मुझे अजीब लगता। वह ऊपर से शांत और भीतर से बेचैन रहती थी शायद। एक दिन उसने सारे पक्षियों के उड़ा दिया। मैंने पूछा," यह क्या किया दीदी, तुम भी पागल हो..." " सानू ! रात सपने में सभी रो रहे थे... उड़ने के लिए बेचैन... सो कब तक बाँध कर रखती,... मेरे बच्चे तुम दिल छोटा ना करो..."

मेरा मुँह लटक गया, पर समय के साथ धीरे -धीरे मैं सहज हो गया। उम्र के साथ मैं भी बड़ा हो रहा था। दीदी और मेरे रिश्ते में एक बाधा उम्र थी। अंतत: एक रोज दसवीं पास कर मैं शहर आ गया। फिर कनेक्शन टूट गया?कभी-कभी सोचता दीदी अब फूल कैसे मँगाती होगी? सपने में कभी देखता पानी का कोई जहाज डूब गया है... सतह पर गुलाब की पंखुड़ियाँ तैर रही हैं... पर धीरे-धीरे सब गायब हो जाता। मैं अपनी पढ़ाई में सब भूलता चला गया। एकाध बार गाँव गया ,तो जो सुना...उससे काफी आहत हुआ...दीदी ने एक मास्टर को बैठा लिया है। फिर सुना गाँव-समाज और खानदान की नाक कटा दी दीदी ने। कुल्टा और चरित्रहीन हो गयी है... फिर सुना घर परिवार के लोगों ने एक दिन खूब पिटाई की उस मास्टर की । वह तबादला करवा कर भाग गया... मन उदास हो गया, अव्वल तो मुझे माँ की बाबत लोगों की बातों पर भरोसा नहीं हुआ कि दीदी ऐसा हो सकती है... फिर अगर ऐसा हो भी, तो आज जब हमारी समझदारी बदल रही है, इसमों ऐसा कौन सा अनर्थ हो गया कि सब ने मिल कर आसमान सिर पर उठा लिया? मैं माँ और बाबू जी के विचारों से सहमत नहीं हो रहा था। अपने तरीके से जीवन जीने का हक हर किसी को है, फिर इसमें चरित्रहीनता वाली बात कहाँ से आ गयी? यह पॉवर किसने दिया किसी को कि आप दूसरे पर छद्म नैतिकता का मार्शल रूल लगाएँ...? दीदी की तरफ से कोई खंडन-मंडन कहीं से नहीं आ रहा था,पर स्मृति में गुलाब की उजड़ी पखुँड़ियों ...कटी पतंगों...उड़ते फड़फड़ाते पक्षी झुंडों के बीच दीदी की क्लांत छवि दिख जाती .... एक बार जब मैं गाँव आया, तो माँ के सामने दीदी से मिलने की इच्छा जाहिर की, पर माँ ने मना कर दिया, कहा," अब उसके घर गाँव का कोई आदमी नहीं जाता। सब घृणा करते हैं। तुम्हारे बाबू जी का कहना है कि वह कुल्टा है,अब तुम बहुत बड़े हो गए हो, इससे बदनामी होगी तुम्हारी...."
मैं माँ को निहारता रहा। माँ इतनी तो कठोर नहीं थी। फिर कहाँ अट्ठावन की दीदी और अट्ठाइस का मैं... दीदी के प्रति यह नजरिया मुझे ऐसा लगा जैसे दुनिया की हर चीज किसी के कहने से गलीज हो गयी हो...पर

मैं माँ से कैसे यह सब कह सकता था, सो चुप लगा गया।

एक दिन मैंने आकांक्षा से कहा," गाँव में मेरी एक दीदी है। बचपन में बहुत लगाव था। बहुत स्नेह करती थी। उनका विवाह एक नेभी अफसर से हुआ था, पर वे गाँव की एक नदी में डूब गए..."

" ओह! वैरी सैड..." वह बिलबिलायी। " मैं उसे रोज गुलाब देता था, जिसे वह जीजा जी के फोटो पर चढ़ाती थी... हम पतंग उड़ाते थे... वह पिंजरे में चिड़िया पालती थी, पर एक दिन सब उड़ा दिया... " मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा," फिर मैं शहर आ गया । इस बीच एक मास्टर से उसके रिश्ते की अफवाह उड़ी गाँव में... लोग उसे चरित्रहीन कहने लगे... मास्टर को तो मार-पीट कर भगा दिया गया... पर अब लोग घृणा करते हैं उससे... मुझे भी फिर कभी उसके यहाँ जाने नहीं दिया गया..."
" क्या कह रहे हो?" आकांक्षा ने विचलित होकर कहा," औरत के मामले में यह संकीर्ण धारणा है हमारे समाज में? यह बहुत गलत है, कोई प्रेम करे, तो यह पाप कैसे है?मैं नहीं मानती...यह भेद-भाव और उच्छेद औरत के साथ ही क्यों?"
" मैं शादी के बाद उससे आशीर्वाद लेना चाहूँगा..." मैंने मन की बात कही," तुम जाना चाहोगी?"

" डेफनेटली!" उसने हाथ चूमते हुए कहा।

...

बड़े खुशनसीब दिन थे। हमारी मँगनी हो चुकी थी। कुछ समय बाद हमने अपने प्रेम को रिश्ते में बदल लिया। शादी के बाद कुछ मांगलिक कार्यों की रस्म अदायगी के लिए हम गाँव आ गए। घर में उत्सव का महौल था। दोनों तरफ के मेहमान थे। सब कार्यक्रम चल रहा था। अचानक एक रोज शाम को माँ से कहा," माँ मैं और आकांक्षा कम्मो दीदी से मिल आएँ...?"
माँ ना-नुकुर करने लगी," तुम मिल आओ। बहू का जाना अभी ठीक नहीं होगा.. लोग हैं न... दस तरह की बातें कहेंगे... बाबू जी की भी राय अच्छी नहीं है... अभी यह सब छोड़ो... नई बहू है..."
फिर वह जान-बूझ कर खिसक गयी।

शाम को मैं अकेले दीदी से मिलने गया। वह चौंक गयी। उत्फुल्लता उसके चेहरे से छलक रही थी," आओ! आओ! सानू मैं तो समझी कि तुम भी मुझे भूल ही गए..."

" वही समझो दीदी, जब नहीं मिल सका तो..." मैंने जबरन मुस्कूराकर कहा और ध्यान से चेहरे को बल्ब की रौशनी में देखा। आगे के बाल सफेद हो गए थे। चेहरे पर झुर्रियाँ... पर तब भी वह सुंदर लग रही थी। सोना पर अगर वक्त की धूल जम जाए, तब भी उसकी आत्मा की चमक नहीं जाती।
" चाय पिओगे...?" वह हकला कर बोली।
" सिर्फ चाय...?" मैंने मज़ाक किया," आज नाश्ता कराओ..."

वह हँस पड़ी," ... जो भी कहो।" चाय-पानी के बाद काफी देर तक बातचीत होती रही । मुझे और मेरी पत्नी को लेकर उसकी जिज्ञासाओं का कोई अंत नहीं था। लग रहा था, जैसे शब्द तितलियों में बदल कर रंग बिखेर रहे हों...अपने गंध और स्पर्श के साथ! मैंने कहा," कभी आकांक्षा भी आना चाहेगी..."
" अच्छा वह जब आए, देखा जाएगा..." वह उठकर कमरे में गयी और बक्स खोलने लगी। मैं भी पीछे-पीछे गया। देखा कमरे का हाल बेतरतीब था, पर जीजा जी की तस्वीर यूँ मुस्कूरा रही थी। दीदी भले बूढ़ी हो गयी थी, पर वे उसी तरह युवा थे, उनकी तस्वीर पर वक्त का कोई असर नहीं था।
" क्या ढूँढ़ रही हो?" मैंने पीछे से कहा।
" अरे! मिल गयी!" वह बाहर निकली। उसके हाथ में काँच की डिबिया थी, जिसे आँचल से पोंछ कर खोला," यह अँगूठी है। किसी अँग्रेज महिला ने तुम्हारे जीजा जी को दी थी... हुआ ये था कि बम्बई के किसी होटल में अचानक आग लग गयी थी और उसकी बेटी लपटों के बीच घिर गयी थी... तुम्हारे जीजा जी ने उसे जान पर खेल कर बचाया था... उन्होंने मुझे दिया था...मैं बहू को दे रही हूँ... इनकार मत करना..."
मैं सकपका गया," अब चलूँ दीदी? आकांक्षा फोन कर रही है..."

" ठीक है..." वह छोड़ने गेट तक आयी," मुझे अच्छा लगा" दीदी मुझे वैसी की वैसी निर्मल लगी, भला कुल्टा कैसे हो सकती है... दरवाजे पर आकर उसने हाथ फैला दिए... दीदी क्या माँग रही है अब? ... मैंने कोट की जेब में हाथ डाला, फूलों से मेरी उंगलियाँ टकरायीं, मैने गुलाब रख कर उसकी हथेलियों को प्यार से चूम लिया।वह मुझसे लिपट गयी। आँसू की गर्म धार से मेरा गिरेबान भीग गया।